International Journal of Scientific Research in Science, Engineering and Technology (www.ijsrset.com)
© 2020 IJSRSET | Volume 7 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

विजय मोहन सिंह के कथा आलोचना के प्रतिमान

निरंजन राय
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, बैसवारा डिग्री कालेज, लालगंज, रायबरेली।

हिंदी कहानी आलोचना के क्षेत्र में डॉ0 नामवरसिंह सुरेंद्र चौधरी और देवीशंकर अवस्थी के बाद जिस दूसरी पीढ़ी के आलोचकों ने हिंदी आलोचना को गति प्रदान की उसमें विजय मोहन सिंह का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। अर्थात हिंदी कथा आलोचना के क्षेत्र में विजय मोहन सिंह दूसरी पीढ़ी के आलोचक करते हैं। जिन्होंने न सिर्फ नई कहानी की रचनाशीलता को ही पहचान बल्कि उनके कहानी चिंतन के दायरे में प्रेमचंद, प्रसाद, चंद्रधर शर्मा गुलेरी एवं समकालीन कहानीकार भी आते हैं। इसके साथ ही विजय मोहन सिंह का आलोचना कर्म हिंदी कहानी के समीक्षा तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि उपन्यास साहित्य को भी गंभीरता से परखने का काम विजय मोहन सिंह ने अपने आलोचना में किया है। कथा आलोचना संबंधी उनकी दो पुस्तक हैं 'कथा समय' और 'आज की कहानी'। वस्तुतः श्री सिंह न सिर्फ कहानी समीक्षा बल्कि कथा समीक्षा का जो वृहद बनता है उस वृहद दायरे को अपने आलोचना कर्म के द्वारा द्वारा बनाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विजय मोहन सिंह जब हिंदी कहानी आलोचना के क्षेत्र में आते हैं तो उनसे पहले एक परंपरा विकसित हो चुकी थी। यही कारण है कि उनकी आलोचना में परंपरा से जुड़े हुए सवाल और समकालीन यथार्थ के विश्लेषण को लेकर के चर्चा देखने को मिलती है। 'किस्सागोई' हिंदी कहानी की रचनाशीलता और उसके परखने का प्रमुख मानदंड रहा है। किस्सागोई को लेकर के कोई एक मत नहीं रहा है। किन्हीं आलोचना ने किस्सागोईको प्रमुखता से पहचान है और किन्ही ने उसका अवमूल्यन भी किया है। विजय मोहन सिंह का मानना है किप्रमुखता एक विशिष्ट कथा मूल्य है और वह इसके महत्व पर जोर भी देते हैं। मनोहर श्याम जोशी की कहानियों पर लिखते हुए विजय मोहन सिंह कहते है''यहां किस्सागोई कमजोरी या लाचारी नहीं है, कहानीकार के कौशल का परिचायक है।'' सिल्वर वेडिंग का कथानक कोई नया नहीं है, कहीं पर 'वापसी' याद दिलाता है तो कहीं ज्ञान रंजन के'पिता' की। लेकिन कहानी की विशेषता है कि अत्यंत सहज ढंग से जहां इसमें एड पंत की जमाने के साथ न चल पाने की बेचारगी का उद्घाटन होता है, तो दूसरी तरफ फूहड़ ढंग की धमा चौकड़ी भरी सस्ती आधुनिकता का भी। एक खास किस्म की किस्सागोई की तरफ लौटना शायद इसलिए भी जरूरी है। कहानी अगर पगोडा वृक्ष के कृत्रिम प्रयोग से उतरकर एक संतुलित कथा तत्व की ओर बढ़े तो इसे शुभ लक्षण ही माना जाना चाहिए। यह मानना भ्रम है की किस्सागोई हमेशा सपाट होती है''[1] इसके साथ ही विजय मोहन सिंह ने कहानीकारों ने कथानक में जो चमत्कार का आयोजन किया उसका विरोध करते हुए कहते हैं'' नई कहानी में घटना न्यूनतम हो गई थी, फिर भी कहानी के साथ चमत्कार जुड़ा रहा''।[2]

नई कहानी की आलोचना के दौरान एक प्रमुख चर्चा देखने को मिलती है कि नई कहानी कैसे अपने पूर्वरत कहानी से भिन्न है और इसमें नया क्या है? इस परिचर्चा में कई बार अतिवादों की भी गुंजाइश देखने को मिलती है। नई कहानी में 'नया' आरंभ में नई कहानी की विशेषता को इंगित करता था। जो आगे चलकर के 'नया' विशेषण न हो करके संज्ञा हो गया उन कहानियों के लिए जो स्वतंत्रता के बाद 50 और 60 के दशक में कहानी लिखी जा रही थी। नई कहानी को नया खाने के लिए कहानीकारों ने भाषा में रोमांस पैदा किया। और इसकी पुष्टि के लिए निरंतर नए अवधारणात्मक पदों का इजाद भी किया।

कमोबेस ऐसे प्रयास हम कमलेश्वर के यहाँ क्या होते हुए दिखते हैं। कहानीकार कमलेश्वर नई कहानी को परिभाषित करते हुए कहानी के लिए उसे' कहानी परखता में उसकी विधायक विशेषता' ईमानदारी की हद तक ईमानदार होना''दायित्वपूर्ण कथन का चुनाव''आत्मबोध का आप्लावन' 'कथा घनीभूत' क्षण' जैसे पदों का इस्तेमाल करते हुए दिखते हैं। कहानीकार कमलेश्वर की इस प्रवृत्ति पर लिखते हुए विजय मोहन सिंह ने कहा है' हिंदी कहानी या। भाषा मात्रा के विकास में जिस तरह आज' उलझे उलझे बाल,'आंखों में उड़ती मरुस्थल की रेत' वाली भाषा बचकानी, हास्यास्पद या फिल्मी लगने लगी है, इस तरह कहानी में इधर एक ऐसी भाषा का वर्णन प्रणाली भी आई है, जिसका हिंदी के विकास से कोई संबंध नहीं है। एक निहायत बनावटी अनुवाद का खोखलापन जरूर है, जिसे कहानी के नाम पर पिछले कुछ वर्षों से स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है''।[3] मुद्राओं की भाषा तथा विद्रोह की व्यवसायिकता' विषयक निबंध में नई कहानी की इस रोमानी ''भाषा संबंधी चर्चा को उद्घाटित करते हुए विजय मोहन सिंह लिखते है कि दरसल हिंदी कहानी में फार्मूले आधारित जो कहानी लिखी गई उसी का यह परिणाम है'' दर्शन भाषा हमेशा अनुभवों को हमेशा धारणाओं में बदलती रहती है। भाषा द्वारा वस्तुओं के धारणाओं में बदलने के इस क्रम में धारणाएं अनुभव से अलग होती जाती हैं और ताजा अनुभव से अलग होती धारणाएं फॉर्मूलों में बदल जाती हैं। अतः अनुभवों की उनकी ताजा स्थिति में पकड़ने के लिए। स्लैंग्स का इस्तेमाल काफी दूर तक सहायक सिद्ध होता है''[4] विजय मोहन सिंह जहां एक तरफ नई कहानी में चल रही कुप्रवृत्तियों की पहचान करते हैं। तो वहीं नई कहानी की जनवादी और स्वस्थ रचनाशीलता की शिनाख्त भी करते हैं। मसलन अमरकांत की कहानियों पर लिखते हुए वह टिप्पणी करते हैं कि ''अमरकांत की कहानी एक विशेष अर्थ में भारतीय हैं वे सामान्य भारतीय व्यक्ति के संस्कारों और भावुकता को व्यक्त करती है तथा उनके साथ जो पिछड़ापन, अंधविश्वास और पाखंड जुड़ा हुआ है, उन्हें भी विडंबनात्मक ढंग से उजागर करती चलती हैं। वह भारतीय मनुष्य की भावनाओं को जितना समझतेनिम्न मध्यवर्गीय और आदर करते हैं उतना ही उसके अन्तर्विरोधों को भी तीखे व्यंगात्मक ढंग से व्यक्त करते हैं। उनकी सहानुभूति प्रधान रूप से समाज के निचले तबके के साथ है जिसे वे उच्च वर्गों की तुलना में हमेशा ज्यादा मानवीय, दायद्र, निरीह, साहसपूर्ण और सरल पाते हैं। उसकी तुलना में मध्यवर्गी व्यक्ति जितना काइयाँ, बल्कि और कायर होता है, इसे उनकी कहानी आरोपित अथवा पूर्वाग्रह ढंग से नहीं, बल्कि की वास्तविकता का विश्लेषण करते हुए उद्घाटित करती है। उनकी कहानियां हिंदी समीक्षा के लिए एक नए मानदंड बनाने की मांग करती हैं, जैसी मांग कभी मुक्तिबोध की कविताओं ने की थी''।[5]

हिंदी आलोचना में यथार्थ को परिभाषित करते हुए कहानी की रचनाशीलता को पहचानने के लिए जिन आलोचनात्मक प्रतिमानों का विकास होता है। उसमें 'अनुभव की प्रामाणिकता' और 'भोगा हुआ यथार्थ' पर विशेष बल देखने को मिलता है। कहानी में 'अनुभव' का क्या महत्व है इस सिलसिले में विजय मोहन सिंह टिप्पणी करते हुए लिखते हैं'' आज की कहानी का अनुभव पर बल देना अधिक सार्थक प्रतीत होता है और यह पता चलता है कि अनुभव किसी अनुवाद की शुरुआत नहीं, बल्कि एक पूरे परिवेश का प्रमाणिक अनुभव है व्यक्ति का आंतरिकता का कोई मनोविज्ञान रहस्य नहीं जिसे कहानी का अपने एकमात्र सही अनुभव के सहारे सुलझाने की कोशिश कर रहा है''।[6]'विजय मोहन सिंह ने कहानी चिंतन में अनुभव के साथ 'परिवेश' का चित्रण कर मुकम्मल यथार्थ ग्रहण की तरफ इशारा करते हैं। उनका मानना है' पुराना कहानीकार समस्याओं को सुलझाता था, वह उन्हें सुलझाना अपना कर्तव्य समझता था। लेकिन आज का कहानीकार समस्या के भीतर है, इसीलिए उसे सुलझाता नहीं सफर करता है''।[7] कहानीकार अगर भोक्ता न होकर के सफर कर रहा है तो कहानीकार केवल आत्म उद्घोषक ही नहीं है। यह करने के बजाय कहानीकार को जीवन की समस्याओं को प्रवेश के संदर्भ में देखना होता है। नई कहानी में 'यथार्थ की प्रमाणिकता' के नाम पर 'भागे हुएथार्थ की' नारेबाजी करने वालों का एक समूह रहा है। जिसकी खबर लेते हुए विजय मोहन सिंह लिखते हैं''बीते हुए कुछ वर्षों में अनेक कहानीकारों ने जिन्हें भोगे यथार्थ के नाम पर पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई यथार्थ को वातावरण से कटकर पेश किया। जबकि सच्चाई यह है कि केवल वातावरण से जुड़ा हुआ यथार्थ ही यथार्थ हो सकता है।

भोगा हुआ यथार्थ कहानी का अपने आप में कोई गुण नहीं है क्योंकि यह पूरा का पूरा तथा कथित होगा हुआ यथार्थ आत्म वंचना का नमूना मात्रा हो सकता है''।[8] वस्तुतः विजय मोहन सिंह का मानना है कि यथार्थ तथा प्रामाणिकता के नाम पर आलोचना में होने वाले इस बेमतलब की बहस ने न केवल आलोचना और हिंदी कहानी की रचनाशीलता को ही विकृत किया है, बल्कि की हिंदी कहानी के पूरे स्वरूप को बेईमानी एवं बेजारू बना दिया। कुल मिलाकर हम यह देखते हैं कि विजय मोहन सिंह कहानी आलोचना के लिए यथार्थवाद को आलोचनात्मक प्रतिमान के रूप में प्रस्तावित करते हैं। साथ ही परिवेश का आशय विजय मोहन सिंह के यहां भारतीय जनजीवन एवं उसके सामाजिक संबंधों की समस्याएं हैं। यही कारण है कि निर्मल वर्मा को वह भारतीय परिवेश से कटे हुए कहानीकार के रूप में पहचानते हैं वे लिखते हैं'' निर्मल वर्मा हमारे अपने संस्कारों से बहुत दूर के कहानीकार जरूर लगते हैं। उनका रुझान और दृष्टि दोनों ही आम हिंदुस्तानी की नहीं है और यह केवल संयोग नहीं है कि उनकी हिंदुस्तान के बारे में लिखी कहानी भी भाषा की बुनावट, बिंबो तथा विश्लेषण में भी विदेश की कहानी लगती हैं''।[9] 'भारतीय उपन्यास की अवधारणा और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यास' शीर्षक निबंध में विजय मोहन सिंह लिखते हैं'' आचार्य द्विवेदी के उपन्यासों को बार–बार पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे निरंतर अपने संपूर्ण अर्थ में भारतीय उपन्यास की तलाश कर रहे हैं। व्यापक अर्थ में समकालीन हिंदी उपन्यास के प्रदर्शन को देखते हुए इस तलाश के लिए जिसे सामान्यतः तलाश कहना ही नहीं चाहिए, केवल रचना प्रक्रिया के अंतर्गत'तलाश का' जो अर्थ है, वही यहां अभीष्ट है! उनसे अधिक समर्थ व्यक्ति की कल्पना करना भी लगभग असंभव है। ऐसा नहीं है कि वह पाश्चात्य साहित्य चिंतन अथवा कथा साहित्य से अनभिज्ञ हों उनके लेख में पाश्चात्य विद्वानों का जो प्रचुर मात्रा में हवाला दिया गया है, उसे जानते हुए ऐसा कहना हिमाकत ही कही जाएगी''।[9]विजय मोहन सिंह का मानना है कि हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय उपन्यास की परिकल्पना को उनके द्वारा रचित मनुष्यों के संदर्भ में ही विश्लेषित तथा परिभाषित करते हैं। द्विवेदी जी ये जानते हैं कि उपन्यास के मनुष्य अच्छी तरह जानते हैं कि पुराने मूल्यों का विरासत ढांचा ध्वस्त हो चुका है या हो रहा है किंतु वह उन मूल्यों को खोज नहीं सकते, क्योंकि उन्हें ठीक उसी अर्थ में पुनः प्राप्त नहीं कर सकते''।[10] अतः इस तलाश में उन मूल्यों के अवशिष्ट अवयव भी होते हैं। अगर यह तलाश ज्यादा गहरी तथा ईमानदार होती है तो। उसी अनुपात में रचनाकार का द्वंद भी बढ़ता जाता है।''एक दूसरे स्तर पर इसे पुनर्गठन की प्रक्रिया में पुराने मूल्यों का संसार रच कर और पुनः उसी के भीतर से उनका ध्वस्त होना दिखाकर भी किया जा सकता है; द्विवेदी जी के उपन्यास यहाँ भारतीय उपन्यास की नई अवधारणा तथा नया रूप प्रस्तुत करते हैं, जो मेरी दृष्टि में हिंदी का कोई उपन्यासकार नहीं कर सका। वह पुनरूत्थानवादी नहीं है, जैसा कि उन्हें टैगोर के साथ जोड़ते हुए आमतौर पर मान लिया जाता है'' इसके अलावा विजय मोहन सिंह उपन्यासकार जैनेंद्र को द्वंद का उपन्यासकार कहते हैं। जैनेंद्र का द्वंद भारतीय मनीषी का पाश्चात्य जगत के चिंतन का द्वंद है''वस्तुतः जैनेंद्र जी का द्वंद स्पष्ट रहा है। लेकिन प्रायः इस संबंध में उनकी अभिव्यक्तियां उतनी स्पष्ट नहीं रही हैं। यह पश्चिम की वैचारिकता, दार्शनिक चिंतन से अवगत भारतीय मनीषी का द्वंद है, जिस कारण भी सतीत्व और पत्नी तो तथा प्रेम में हमेशा एक निश्चित अंतर या एक निर्माता अंतर नहीं रखना चाहते। जैसे जान्ह्वी में जान्ह्वी अपने प्रेम के कारण समाज नियोजित विवाह को अस्वीकार कर देती है. लगभग यही चीज हम 'त्यागपत्र' में पाए हैं जहां विवाह के पश्चात भी विवाह पूर्व प्रेम की ईमानदार स्वीकृति विवाह विच्छेद या प्रत्याग का मुख्य कारण बनती है।'त्यागपत्र' में मृणाल का कोयले वाले के साथ शारीरिक संबंध एक पाखंड पूर्ण समाज के दोहरे नैतिक नियमों के प्रति एक प्रकार का आत्म यातना पूर्ण विद्रोह है लेकिन 'परख' में सत्यधान का रोमांटिक आदर्श तो खंडित किया गया है। किंतु बिहारी के साथ कट्टो का तथाकथित विधवा विवाह एक वैधव्य यज्ञ के रूप में ही स्वीकार किया जाता है, जहां शारीरिक संबंधों के लिए कोई स्वीकृति नहीं है''।[12]वस्तुतः जैनेन्द्र यह द्धन्द्ध नैतिकता और आदर्श का भी है, जिसकी ओर विजयमोहन सिंह संकेत करते है।

सन्दर्भ

1. कथा समय, विजय मोहन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दूसरा संस्करण, 2002, पृ. 44
2. आज की कहानी, विजय मोहन सिंह, राधाकृष्णन प्रकाशन, दूसरा संस्करण 2003, पृ0 103
3. कथा समय, विजय मोहन सिंह, पृ0 54
4. आज की कहानी, विजय मोहन सिंह, पृ0 141
5. वहीं, पृ0 72
6. वही, पृ0 48
7. वहीं, पृ0 87
8. वहीं, पृ0 141
9. वहीं, पृ0 64
10. कथा समय, विजय मोहन सिंह, पृ0 70
11. वहीं, पृ0 71
12. वहीं, पृ0 80